International Journal of Sanskrit Research 2024; 10(3): 38-43

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2024; 10(3): 38-43
© 2024 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 10-04-2024
Accepted: 09-05-2024

डा. त्रिद्वीप सरकार
अध्यापक, संस्कृत विभाग, बांकुडा विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल, भारत

Corresponding Author:
डा. त्रिद्वीप सरकार
अध्यापक, संस्कृत विभाग, बांकुडा विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल, भारत

वैदिकवैड्मय में भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ

डा. त्रिद्वीप सरकार

प्रस्तावना

हम सभी जानते है, वेद शब्द का अर्थ ज्ञान है । अर्थात् वेदों में ब्रह्माण्ड का समस्त विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है । जैसा कि कहा गया कि वेदों में सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। जिनमें आध्यात्मिक ज्ञान से लेकर आधुनिक एवं वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त होता है । उनमें से हमारी भारतीय संस्कृति के अनेक सन्दर्भ वैदिक ग्रन्थों में प्राप्त होता है । संस्कृति के सर्दर्भ के आलोचना से पूर्व संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा आलोचना करना होगा ।

संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा में सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय से संस्कृति शब्द का निर्माण होता है । संस्कृति शब्द से परिष्कृत कार्य का बोध होता है । मन एवं आत्मा की तृप्ति के लिए मनुष्य जो विकास या उन्नति करता है, वह समग्र रूप से संस्कृति के अन्तर्गत आता है । संस्कृति शब्द के सहित सभ्यता शब्द का भी प्रयोग देखा जाता है । परन्तु संस्कृति एवं सभ्यता ये दोनों शब्द अलग अलग है । संस्कृति किसी व्यक्ति के अन्तः रूप होता है, जबकि सभ्यता व्यक्ति के वाह्य रूप होता है । सभ्यता मानव का शरीर है तो संस्कृति मानव का आत्मा है ।अतः स्पष्ट है कि संस्कृति एक प्रकार का मानसिक भावना, एवं मनोभाव, विचार है, जो व्यक्ति में स्वतः ही आ जाती है । संस्कृति आन्तरिक उन्नति है । इसी कारण संस्कृति का अनुकरण नहीं जा सकता, अपितु अपनाया जाता है । यह संस्कृति आन्तरिक वस्तु होने के कारण इसे किसी प्रकार से मापा नहीं जाता । संस्कृति मानव जीवन का प्राण स्वरूप है । संस्कृति के बिना कोई देश वा जाति सभ्य नहीं हो सकता और सभ्यता के बिना संस्कृति की कल्पना करना असम्भव है । इस प्रकार से सभ्यता और संस्कृति किसी न किसी रूप में सम्बन्धित है ।

वैदिक संस्कृति के कतिपय उद्धरण वैदिक वाङ्मय मे देखा जा सकता है, जिन्हें हम वैदिक संस्कृति की विशेषताएँ कह सकते हैं –

आध्यात्मिकता

वैदिक संस्कृति की सबसे बडी विशेषता यह है कि वेद मन्त्रों में आध्यात्मिक भावना है । अध्यात्म एवं दार्शनिकता से जुडे सभी विचारों पर आध्यात्मिकता का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है । डां. बलदेव उपाध्याय के अनुसार – "किसी भी संस्कृति की श्रेष्ठता का मापक उसका आध्यात्मिक चिन्तन होता है । जिस संस्कृति में आध्यात्मिक विचार जितने अधिक और गहन होते हैं, वह संस्कृति इतिहास में उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है" ।[1] ऋग्वेद के अनेक दार्शनिक सूक्त हैं जिनमें दार्शनिक विचारों के साथ आध्यात्मिक विषयों का विशद् वर्णन प्राप्त होता है । ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में सृष्टि के मूल तत्व का वर्णन करता है ।चारवेदों की उत्पत्ति पुरुष से बताया गया है

तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दान्सि जज्ञिरे तस्मात् यजुः तस्मादजायत ।।

यहा पर पुरुष(परमात्मा) को ही सृष्टि सर्वस्व, वर्तमान, भूत और भविष्य बताया गया है । पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम् ।[2] नासदीय सूक्त में सृष्टि के पूर्व स्थिति का वर्णन प्राप्त होता है -नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम् ।[3] वेदों में ऐसे अनेक स्थान है जहां पर मनुष्य के आध्यात्मिकता को जगाता है- जैसे जो अकेला खाता है, वह अकेला ही पापी होता है – केवलाघो भवति केवलादि ।[4] वह मित्र नहीं है, जो मित्र को धन-दान न दे – न स सखा यो न ददाति सख्ये ।[5]

अथर्ववेद के अनेक ऐसे सूक्त है जिनमें आध्यात्मकता की बात कही गई है – जैसे मधुविद्या(9.1),सर्वाधार ब्रह्म(10.7), ज्येष्ठब्रह्म (10.8),उच्छिष्टब्रह्म(11.7),अध्यात्म (11.7), ब्रह्मप्रकाशन सूक्त में (10.20) सूक्त में प्रश्नोत्तर शौली में सृष्टि का मूलतत्त्व ब्रह्म को ही प्रतिपादित किया गया है –

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।
केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ।।[6]
ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता ।
ब्रह्ममेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ।।[7]

उपनिषदों का विषय ही ज्ञान है । उपनिषद् का अर्थ से ही इसका प्रतिपाद्य विषय को समझा जा सकता है । उप उपसर्ग समीप अर्थे, नि उपसर्ग निश्चय से वा निष्ठापूर्वक, सद् धातु बैठना अर्थ में अर्थात् तत्त्व ज्ञान के लिए गुरु के पास सविनय पूर्वक बैठना । शंकराचार्य ने अविद्या का नाश, ब्रह्म प्राप्ति और उसका ज्ञान तथा दुःख-निरोध, इन तीन अर्थों को उपनिषद् को ब्रह्मविद्या का द्योतक माना है ।[8] तैत्तिरीयोपनिषद् में ' मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यो देव भव'[9] की भावना आध्यात्मिकता का उत्कृष्ट उद्धरण है ।

आस्तिकता

भारत के प्रायः प्रत्येक मनुष्य ईश्वर पर विश्वास रखने वाले हैं, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य कोई भी कार्य करता है, उस कर्म का फल ईश्वर अवश्य ही प्रदान करता है । इसी विश्वास के कारण भारतीय संस्कृति में आस्तिकता की भवना जीवित है । प्रत्येक मानव जानता है कि ईश्वर जगत् के हर कोण में विद्यमान है । ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है कि – ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।[10] इस आस्तिकता के कारण ही मनुष्य अनुचित कार्य करने से दूर रहता है । इसी आस्तिकता के कारण उस परमात्मा को पुत्र के लिए पिता के समान सुखकारक कहा गया है –

[1] भारतीय संस्कृति पृ.11
[2] ऋग्वेद 10.90.2
[3] ऋग्वेद 10.90.2
[4] ऋग्वेद10.117.6
[5] ऋग्वेद 10.117.4
[6] अथर्ववेद 10.20.24
[7] अथर्ववेद 10.20.25
[8] वैदिक साहित्य एवं संस्कृति पृ.167
[9] तैत्तिरीयोपनिषद् 1.11
[10] ईशावास्योपनिषद् 2

स नः पितेव सुनवेऽग्ने सुपायनो भव ।
सचस्व नः स्वस्तये ।।[11]

सर्वांगीणता

मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन में पूर्णता प्राप्त हो, इसके लिए वैदिकसंस्कृति में क्रमबद्ध योजना का संकेत प्राप्त होता है । मानवजीवन की आध्यात्मिक, शारीरिक तथा मानसिक एवं सामाजिक उन्नति के लिए चार आश्रमों का उल्लेख प्राप्त होता है । अथर्ववेदीय ब्रह्मचर्यसूक्त में ब्रह्मचारी के कर्तव्य एव ब्रह्मचर्य के महत्व का वर्णन प्राप्त होता है । ब्रह्मचारी तीनों लोकों को अपने मुष्ठी में रख सकता है । अर्थात् तीनो लोको का ज्ञान को जान सकता है । ब्रह्मचर्य से ब्रह्मचारीमृत्यु को पार करके, अमृतत्त्व को प्राप्त कर सकता है - ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।[12] ऋग्वेद में प्रसिद्ध विवाह सूक्त[13] है, जिससे गृहस्थाश्रम का उल्लेख प्राप्त होता है । परिवार में एक स्त्री का क्या क्या कर्तव्य हैं, सभी के प्रति किस प्रकार का मनोभाव होना चाहिए । इन सब का उल्लेख विवाहसूक्त में प्राप्त होता है, जो कि भारतीय संस्कृति के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण तत्व है ।

सम्राज्ञी श्वसुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरी सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु ।।[14]

वानप्रस्थ एवं सन्यास आश्रम का सम्बन्ध हि ज्ञान और तपस्या से है, जो कि हमारे संस्कृति के मूल तत्व है । हमारी संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्टय की कल्पना की गइ है, जिसे प्राप्त करना मानव मात्र का लक्ष्य है । पुरुषार्थ चतुष्टय यथा - धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष ।

आशावाद

भारतीय संस्कृति की एक और विशेषता है, आशावादी होना । प्रत्येक मानव के जीवन में सुख-दुःखों एवं विपत्तियों का आना- जाना होता रहता है । इन सब विपत्तियों एवं दुःखों को पार करके, अपने लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है । इसके पिछे संस्कृति में आशावाद का होना हि मूल कारण है । इसी कारण संस्कृति में निराशा का कोई स्थान नहीं है । आशावाद को वैदिक ऋषि शतायु होने का प्रेरणा एवं प्रार्थना की गई है –

जीवेम शरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतम् ।[15]

भारतीय वैदिक संस्कृति से परिपूर्ण मनुष्य अन्धकार से आच्छन्न वातावरण में भी प्रकाश की किरण अन्वेषण कर लेता है, एवं मृत्यु की शाश्वत सत्यता में भी अमरत्व का आरोप कर देता है –

असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय ।।[16]

कर्मवाद

भारतीय संस्कृति ने सम्पूर्ण विश्व को कर्मवाद का जो प्रेरणा प्रदान किया है, वह अन्य किसी संस्कृति में नहीं है । निरन्तर कर्म करने की प्रेरणा सभी धर्म, दर्शनों एवं संस्कृतियों में प्राप्त हो सकता है, परन्तु प्रयोजन सिद्ध ना होने पर भी निष्कामना की भाव से कार्य करते रहने की योजना केवल भारतीय वैदिक संस्कृति में ही प्राप्त होता है । ईशावास्योपनिषद् में उद्घोष किया गया है कि

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।[17]

मनुष्य को कर्म करने मात्र का अधिकार है । उस कर्मफल की प्राप्ति का अधिकार मनुष्य को नहीं है । अतः अपने द्वारा किये गये कर्म के फल की इच्छा भी नहीं करनी चाहिए । यदि मनुष्य में कर्मफल की इच्छा होती तो वह आसक्ति के बन्धन में आसक्त होकर

[11] ऋग्वेद 1.1
[12] अथर्ववेद 11.5.19
[13] ऋग्वेद 10.85
[14] ऋग्वेद 10.85
[15] यजुर्वेद 36.8
[16] बृहदारण्यकोपनिषद् 1.3.8
[17] ईशावास्योपनिषद् 2

आसक्ति के बन्धन से मुक्त नहीं हो पाता और अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष मार्ग के अधिकारी भी नहीं हो पाता ।

ऐतरेयब्राह्मण में भी कर्म के निरन्तरता की प्रेरणा प्राप्त होता है – शुनःशेप उपाख्यान में निरन्तर चलने की बात कही गई है – चरैवेति चरैवेति । चर-एव-इति अर्थात् चलते रहो, चलते रहो । सदा कर्म करते रहो, सदा उद्दोगशील रहो, निरन्तर कर्मठ बने रहो । कर्मनिष्ठ जीवन ही जीवन है । इन्द्र इच्चरतः सखा परमात्मा भी कर्मठ का ही सहायक होता है । नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति । अर्थात् अथक परिश्रम किये बिना श्री नहीं मिलती ।

पुनर्जन्मवाद

मनुष्य मृत्यु के पश्चात् अपने कर्म के अनुसार विभिन्न योनियों में जन्म ग्रहण करता है, पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त वैदिक संस्कृति का अन्यतम विशेषता है । पुनर्जन्म होता है, क्योंकि मनुष्य के किये गये शुभ-अशुभ कर्म का फल अवश्य ही भोगना होता है । कहा गया है – अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशाभम् । अर्थात् मानव द्वारा किया गया कर्म का फल इस जन्म में या पर जन्म में भोगना होता है । इस प्रकार पाप-पुण्य पी परिपुष्टि तभी होती है, जब पुनर्जन्म को स्वीकार किया जाता है । इसी पुनर्जन्म के अवधारणा के कारण ही मनुष्य यथा सम्भव सदाचार पालन करने में प्रयत्नशील रहता है । इसी पुनर्जन्म के निवारण के लिए मीमांसक स्वर्गकाम व्यक्ति को यज्ञानुष्ठान करने को कहा है – स्वर्गकामो यजेत ।

यज्ञ परायणता

भारतीय ऋषि मुनियों ने मानवजीवन में यज्ञ को अधिक महत्त्व दिया है । भारतीय परिवार में यज्ञ के द्वारा ही सभी शुभ कार्य का प्रारम्भ होता है । भारतीय संस्कृति में यज्ञ को श्रेष्ठ कर्म के रूप में स्वीकार किया गया है – यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म ।[18] यज्ञ को संसार का पालक और रक्षक कहा गया है ।[19] यज्ञ के दो रूप है- प्राकृत और कृत्रिम । प्राकृत यज्ञ निरन्तर चल रहा है । इस यज्ञ में वसन्त ऋतु घी है, ग्रीष्म ऋतु समिधा और शरद् हवि है ।[20] इससे ही वर्षचक्र, सृष्टिचक्र चलता है । प्रत्येक गृहस्थों का पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान करना अनिवार्य माना गया है । ये पञ्चमहायज्ञ – ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ एवं अतिथियज्ञ । इन सब यज्ञ का अनुष्ठान लोक कल्याण की भावना से किया जाता है । यजुर्वेद यज्ञप्रधान वेद के रूप में प्रसिद्ध है । इसके अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञो का साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया गया है । इसी यज्ञ के माध्यम से मनुष्य में त्याग की भावना उत्पन्न करता है ।

त्याग-भावना

भारतीय संस्कृति की अन्यतम विशेषता यह है कि मनुष्य में त्याग की भावना उत्पन्न करना । मानव मात्र का प्रधान लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है । मोक्ष प्राप्त करने के लिए मनुष्य को विषयों का भोग त्याग करना होगा ।इसी कारण वेद उपदेश करता है कि हे मनुष्यों इस संसार में जो कुछ है, वे सब अनित्य है एवं ईश्वर को बनाएं हुए है । अतः इन सभी विषयों पर हमारा कोई अधिकार नहीं है, इस प्रकार जानकर हमें अपने जीवन निर्वाह करने के लिए जितनी वस्तुओं की आवश्यकता है, उतने का ही ग्रहण करना त्याग है । यज्ञ में " इदमग्नये इदन्न मम" का अभिप्राय यही है । ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है – तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।[21] यह वेदोक्त वाक्य इस बात का संदेश देता है कि भारतीय संस्कृति के कण -कण में त्याग और तपस्या की भावना निहित है ।

कठोपनिषद् में आत्मज्ञान के इच्छुक नचिकेता तीनों लोकों के ऐश्वर्य का परित्याग कर देता है । ऐसी त्याग भावना केवल मात्र आपनी संस्कृति में ही देखने को मिलता है ।

विश्वकल्याण एव विश्वबन्धुतत्व की भावना

[18] शतपथब्राह्मणम् .1.7.1.5

[19] यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भुनक्ति । शतपथब्राह्मणम् .1.1.1.13

[20] वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः । ऋग्वेद 10.90.6

[21] ईशावास्योपनिषद् 2

वेदोक्त मन्त्रों के पद- पद में विश्वकल्याण की भावना ओतप्रोत है ।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद् भद्रं तन्न आ सुव ।।[22]

वेद वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का प्रतिपादन करता है । वेद मन्त्रों में जो भी प्रार्थनाएँ की जाती है, वे सब वहुवचन में हैं । अर्थात् कोई भी सुख, समृद्धि केवल अपने लिए ही नहीं यचना किया जाता, अपितु सभी प्राणी के लिए याचना किया जाता है । जैसे-

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।।[23]

अर्थात् हे प्रभु! जो प्रदीप्त सूर्य संसार को प्रकाश दे रहा है, वह दो पैर वालो एवं चार पैर वालो के लिए सुख देने वाला हो । अन्य एक मन्त्र में –

शं नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ।।[24]

अर्थात् हे प्रभु ! आपकी कृपा से वायु हमारे लिए सुख को वहा लाये, सूर्य हमारे लिए ताप दे, गड़गड़ाता हुआ दिव्य मेघ हमारे लिए सुख बरसाये ।
इन दो मन्त्रों में सभी दो पैर वाले मनुष्यादि एवं चार पैर वाले पशु आदि के लिए सुख की प्रार्थना की गई है । दूसरे मन्त्र में सभी प्राणीमात्र के लिए सूर्यादि उपकारक एवं सुखकारक होने की याचना की गई है ।
यजुर्वेद के एक मन्त्र का कथन है – सब मुझे मित्र की दृष्टि से देखें । मैं सबको मित्र की दृष्टि से देखूँ और परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें ।-

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।।[25]

सभी प्राणीयों के लिए वैदिक संस्कृति में पञ्चमहायज्ञ का प्रावधान किया गया है । भूतयज्ञ के माध्यम से सभी प्राणीयों का कल्याण होता है । सभी मनुष्य का एवं समस्त पशुओं का कल्याण हो । प्रत्येक गाव में सभी हृष्ट-पुष्ट और निरोग हो –

यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे, विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम् ।[26]

इस प्रकार कह सकते है कि हमारी संस्कृति में सभी का सुख की कामना की जाती है –कहा जाता है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाद् भवेत् ।।

यह ही हमारी संस्कृति की विशेषताएँ है, जहाँ पर सभी की निरोगता एवं कल्याण के लिए प्रार्थना किया जाता है ।
उपर्युक्त सभी सन्दर्भों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति मानव जीवन के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है । इस संस्कृति में सभी उदात्त भावनाओं एवं मूल्यों के संरक्षण के कारण वर्तमान समय में भी वैदिक काल के समान मूल्यवान एवं उपयोगी है । भारतीय संस्कृति किसी सीमा से आबद्ध नहीं है .। यह सार्वदेशिक एव सार्वभौमिक स्वरूप है । यह वैदिक संस्कृति सर्वप्राचीन है, तथापि आज भी हमारी संस्कृति सभी को सर्वत्र मार्गदर्शन करती है । अर्थात् हमारी संस्कृति सर्वप्राचीन होने पर भी आज भी जीवित है .इसिलिए तो कहा है –

यूनान-ओ –मिस्र ओ रोमा सब मिट गये जहाँ से
अब तक मगर है बाकी नामों निशां हमारा,
कुछ तो बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी ।।

[22] यजुर्वेद 30.3
[23] यजुर्वेद 36.8
[24] यजुर्वेद 36.10
[25] यजुर्वेद 36.18
[26] यजुर्वेद 16.48

सहायक ग्रन्थ

1. ईशादि नौ उपनिषद्, गोरखपुर, गीताप्रेस, संवत २०७२
2. ऋग्वेदसंहिता (सायणभाष्यसहिता), पुणे, वैदिक संशोधन मण्डल,
3. उपाध्याय, बलदेव एवं व्रज बिहारी चौबे, संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, लखनऊ,उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान,2012
4. गोयेल, डां. प्रीतिप्रभा, भारतीय संस्कृति, जोधपुर, राजस्थानी ग्रन्थागार, 2016
5. द्विवेदी, डां. कपिलदेव, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, , वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2010
6. पाण्डेय,ओमप्रकाश, वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप तथा विकास, दिल्ली, नाग पब्लिशर्स, 2005
7. ज्ञानी,शिवदत्त, वेदकालीन समाज, वाराणसी,चौखम्बा विद्याभवन, 2014.
8. सातवलेकर, दामोदर, यजुर्वेदसुबोधभाष्यम्, पारडी, स्वाध्यायमण्डलम्, 1985.
9. सातवलेकर, दामोदर, अथर्ववेदसुबोधभाष्यम्,, पारडी स्वाध्यायमण्डलम्,1985.
10. सातवलेकर, दामोदर, ऋग्वेदसुबोधभाष्यम्, पारडी, स्वाध्यायमण्डलम्,संवत 2024.
11. सिद्धान्तालंकार, डां. सत्यव्रत, एकादशोपनिषद्, दिल्ली, विजयकृष्ण लखनपात, 2003.